आद्यकथन।

किसी भी विषयके सच झूठको समझने या सिद्ध करने के लिये न्यायकी आवश्यकता होती है। न्याय विषयको बिना अच्छी तरह समझे कोई भी पुरुष अपने अभिमतका मंडन और परपक्षका खंडन नहीं कर सकता इसी कारण परोपकारिणी बुद्धिसे प्रेरित होकर हमारे परमपूज्य ऋषीश्वर श्रीसमन्तभद्राचार्य, श्रीअकलङ्कदेव, श्रीविद्यानन्दि स्वामी, श्रीप्रभाचन्द्राचार्य, श्रीमाणिक्यनन्दि आदि आचार्यों ने न्यायविषयके अपूर्व, समुज्ज्वल ग्रन्थरत्नोंका निर्माण किया है।

वे सभी ग्रंथ संस्कृत भाषामें हैं इस कारण संस्कृत भाषाका पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किये बिना विद्यार्थी उन ग्रंथोंको नहीं पढ़ सकते अतः छोटे विद्यार्थियोंके लिये सरल एक हिन्दी भाषाके ग्रंथकी आवश्यकता देखकर मैंने इस न्यायबोधक ग्रन्थको लिखा है। आशा है, विद्वान् पुरुष इसको स्वीकार करेंगे।

श्री अनन्तवीर्याचार्यविरचित प्रमेयरत्नमाला ग्रन्थकी भाषाटीकाका लिखना मैंने पहले आरम्भ किया था जिसके तीन परिच्छेद समाप्त भी हो गये थे किन्तु श्रीमान् माननीय पं० खूबचन्दजी शास्त्रीने उसको अनावश्यक बतला कर सरल भाषामें नवीन न्याय पुस्तक लिखनेकी सम्मति दी तदनुसार मैंने यह छोटी पुस्तक लिखी है। अवसर पाकर यदि हो सका तो इसके आगे न्यायबोधकका दूसरा तीसरा आदि भाग भी लिखनेका उद्योग करूंगा।

विनीत—

अजितकुमार जैन.

चावली (आगरा)



श्री जिनेन्द्राय

न्यायबोधक प्रथम भाग।

मंगलविधान।

स ब्रह्मनिष्ठः सममित्रशत्रु-
र्विद्याविनिर्वान्तकषायदोषः।
लब्धात्मलक्ष्मीरजितो जितात्मा,
जिनः श्रियं मे भगवान् विधत्तां॥

प्रथम-पाठ।

न्याय।

सच्ची युक्तियोंसे सत्य असत्यके निर्णय करनेको न्याय कहते हैं।

भावार्थ—हमारा जब कभी किसी बातके विषयमें परस्पर मतभेद पैदा होता है तब हमें इस बातकी आवश्यकता दीखती है कि "हममेंसे किस पुरुषका कहना सत्य है?" इस बातका निश्चय हो जाय। उससमय हम किसी निष्पक्ष पुरुषके सामने

अपना समस्त झगड़ा सुनाते हैं वह सबकी बातोंको सुनकर बताता है कि अमुक मनुष्यका कहना इसकारण सत्य है और अन्य सबका कहना इसकारण असत्य है। इसप्रकारके सच्चे निर्णयको ही न्याय कहते हैं। जैसे देवचन्द्रने धर्मचन्द्रसे कहा कि यदि पानीमें अग्नि लग जावे तो बेचारी मछलियां सब मर जावें। तब धर्मचन्द्रने उत्तर दिया—ना भाई! वे किनारेके पेड़ोंपर चढ़जावेंगी। देवचन्द्रने इस बातको नहीं माना तब उधर ही विमलचन्द्र आ निकला, उसने कहा कि तुम दोनोंका कहना झूठ है क्योंकि न तो पानीमें अग्नि ही लग सकती है और न मछलियां ही पेड़ पर चढ़ सकती हैं तब वे तीनों अपने कहनेको सत्य बतलाते हुए झगड़ने लगे। अन्तमें यह झगड़ा मिटानेके लिये बुद्धिसेनके पास गये और अपना सब झगड़ा उनसे कह सुनाया। बुद्धिसेनने सब झगड़ा सुनकर फैसला किया कि तुममेंसे विमलचन्द्रका कहना सत्य है क्योंकि पानीमें न तो अग्नि लग सकती है क्योंकि पानीको छूते ही वह बुझ जाती है और न मछलियां ही वृक्षों पर चढ़ सकती हैं क्योंकि न पानीके सिवाय जब कि जमीन पर भी नहीं चल सकती है फिर वृक्षोंपर तो विना हाथ पैर पञ्जोंके कैसे चढ़ सकेंगी?

जिसप्रकार बुद्धिसेनने विमलचन्द्रकी बातको सत्य और देवचन्द्र धर्मचन्द्रकी बातको असत्य सिद्ध करदिया उसीप्रकार जब किसी पदार्थके स्वरूप आदिके विषयमें झगड़ा (मतभेद)

उत्पन्न होता है उससमय प्रत्यक्ष अनुमान आदि सच्ची युक्तियोंसे जो सत्य असत्यका ठीक निर्णय किया जाता है वही न्याय है।

इसके दो भेद हैं—एक न्याय और दूसरा न्यायाभास, जो बात सच्ची युक्तियोंसे सिद्ध हो जिसमें कि फिर कोई बाधा नहीं आवे वह तो न्याय है। जैसे कि आत्मा ज्ञानगुणमय है।

जो बात असत्य युक्तियोंसे सिद्ध हुई हो इसीकारण जिसमें प्रमाणोंसे बाधा आती हो वह न्यायाभास है जैसे कि सांख्यमत द्वारा माना गया ज्ञानशून्य आत्मा।

दूसरा पाठ।

लक्षण।

अनेक मिलेहुए पदार्थोंमेंसे किसी एक पदार्थको अलग करनेवाले चिन्हको लक्षण कहते हैं। जैसे गडका लक्षण नाकके ऊपर एक सींग।

हमारे सामने जब कभी बहुतसे पदार्थ आ जाते हैं जो कि सामान्य तौरसे एक सरीखे दीखते हैं उनमेंसे यदि हम किसी मनुष्यको किसी एक खास पदार्थको बतलाना चाहते हैं तब हम उस पदार्थका कोई ऐसा चिन्ह लेकर उस मनुष्यको समझाते हैं जो चिन्ह दूसरे पदार्थों में नहीं मिलता है। ऐसा करनेसे वह मनुष्य झट उस पदार्थको समझ लेता है। बस उसी विशेष चिन्हको उस पदार्थका लक्षण कहते हैं। जैसे एक पशु

सग्रहालय (चिडियाघर) में सिंह बाघ घोडा हाथी भैंसा हरिण गैंडा आदि हजारों पशु भरे हुए हैं वहांपर जिनदत्त गैंडाको जानना चाहता है तब वीरसेनने उससे कहा कि जिस जानवरकी नाक पर एक सींग हो वह गैंडा है यह सुनकर जिनदत्तने गैंडाको चट पहिचान लिया । इसलिये "नाकपर एक सींग" यह गैंडाका लक्षण है।

लक्षण दो प्रकारका होता है-आत्मभूत और अनात्मभूत।

जो लक्षण पदार्थके स्वरूपमें मिला हो उससे अलग न होसके उसे आत्मभूत लक्षण कहते ह। जैसे गैंडाका लक्षण एक सींग, अग्निका लक्षण उष्णता ।

जो लक्षण पदार्थके रूपमें न मिला हो, उससे अलग भी हो जाता हो उसे अनात्मभूत लक्षण कहते ह। जैसे भीमसेनका लक्षण गदा।

यहां पर ऊपरके उदाहरणोंमें गैंडेका सींग गैंडेसे और उष्णता अग्निसे अलग नहीं हो सकती है इसलिये वे दोनों आत्मभूत लक्षण हैं तथा भीमसेनका गदा भीमसेनसे अलग भी रह सकता है अत वह अनात्मभूत लक्षण है।

जिसका लक्षण किया जाय उसे लक्ष्य कहते हैं जसे उष्णताका लक्ष्य अग्नि।

जिसका लक्षण न किया जाय उसे अलक्ष्य कहते हैं। जैसे उष्णताका अलक्ष्य जल आदि।

भावार्थ—लक्षण जहांपर रहता है वह लक्ष्य है और उस

लक्ष्यके सिवाय अन्य सब पदार्थ अलक्ष्य होते हैं। उष्णता अग्निमें रहती है, जल आदिमें नहीं इसकारण उष्णताका लक्ष्य अग्नि है और अलक्ष्य जल आदि हैं।

तीसरा पाठ।

लक्षणाभास।

जो लक्षण दोषसहित हो अर्थात् लक्षणसरीखा मालूम तो पड़े किंतु वास्तवमें लक्षण न हो वह लक्षणाभास है। जैसे श्रीधरका लक्षण मनुष्यता। यहांपर मनुष्यता श्रीधरका असली लक्षण नहीं है क्योंकि मनुष्यता तो धनपाल, नेमिदास आदि सभी मनुष्योंमें मिलती है।

लक्षणके दोष तीन प्रकारके होते हैं, अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव।

जो लक्षण लक्ष्यके समस्त भागोंमें नहीं रहता है यानी कुछ अंशोंमें पाया जाता है उसको अव्याप्ति दोष कहते हैं। जैसे पशुओंका लक्षण सींग। क्योंकि सींग यद्यपि गाय भैंस आदि कुछ पशुओंमें पाये जाते हैं किंतु लक्ष्यरूप घोड़ा, हाथी, सिंह आदि कुछ पशुओंके नहीं भी होते हैं इसकारण इस लक्षणमें अव्याप्ति दोष आता है।

जो लक्षण अलक्ष्यमें भी रहे वह अतिव्याप्ति दोष है। जैसे गायका लक्षण सींग। सींग जैसे लक्ष्यभूत गायमें मिलता है उसी तरह अलक्ष्यभूत भैंस, बकरी हरिणके भी मिलता है। इस लिये इस लक्षणमें अतिव्याप्ति दोष आता है।

जो लक्षण लक्ष्यमें सर्वथा न पाया जाय उसे असम्भव दोष कहते हैं जैसे मनुष्यका लक्षण पूंछ, क्योंकि पूंछ अपने लक्ष्य भूत मनुष्यमात्रमें सर्वथा नहीं मिलती है इसलिये इस लक्षणमें असम्भव दोष आता है।

चौथा पाठ।

प्रमाण।

अपने तथा अन्य पदार्थोंके यथार्थ जाननेवाले ज्ञानको प्रमाण कहते हैं।

भावार्थ—संसारके सभी पदार्थ ज्ञेय (ज्ञानके विषय अर्थात् जानने योग्य) हैं उनको जाननेवाला ज्ञान है। जिसप्रकार सूर्य सब पदार्थोंको प्रकाशित करता है उसीतरह ज्ञान अपने सामने आयेहुए योग्य पदार्थको जान लेता है।

ज्ञान जिसप्रकार अन्य पदार्थको जानता है उसीतरह स्वयं अपनेको भी जानता है उसको जाननेकेलिये किसी दूसरे ज्ञानकी आवश्यकता नहीं होती है। जैसे सूर्य अन्य पदार्थोंको प्रकाशित करता है साथ ही वह अपनेको भी प्रकाशित करता है। ऐसा नियम है कि जो स्वयं अपनको प्रकाशित नहीं करता है, दूसरी चीजोंको भी प्रकाशित नहीं कर सकता है।

ज्ञान जब यथार्थ यानी जैसेका तैसा जानता है उस समय उसको प्रमाण कहते हैं। जैसे यह पुस्तक न्यायबोधक है।

जो ज्ञान असत्य यानी कुछका कुछ जानता है उसे अप्रमाण

या प्रमाणाभास कहते हैं। जैसे सीपके टुकड़ेको चांदी समझना।

पांचवां पाठ।

प्रमाणाभासके भेद।

प्रमाणाभास यानी असत्य जाननेवाला ज्ञान तीनप्रकारका होता है संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय।

जो ज्ञान विरुद्ध अनेक कोटियोंको छूनेवाला होता है उसे संशय कहते हैं। जैसे यह सीप है या चांदी है?

जिस समय विषयभूत पदार्थके सामान्य धर्म तो मालूम पड़ें किंतु दूरवर्ती होनेसे, प्रकाशकी कमी होने आदि कारणोंसे उसके विशेष धर्मोंका भान न हो सके जैसे कि सीप और चांदीमें जो सफेद रंग होता है वह तो सीपमें दीख पड़ा किंतु कुछ धुंधलापन होनेसे तथा सीप दूर पड़ी होनेसे उसके विशेष धर्म जैसे कि सीपमें कुछ हरे रंगकी झलक टेढ़ी सरीखा हल्का वजन, चड़चड़ाहट आदि तथा चांदीमें निर्मल सफेदी आदि जाननेमें नहीं आये, उससमय अनेक और लटकता हुआ ज्ञान होता है यानी किसी एक बातका निश्चय नहीं होता। जैसे यह सीप है? या चांदी है? ऐसे ज्ञानको संशय कहते हैं।

विपरीत एक कोटिका निश्चय करानेवाला ज्ञान विपर्यय कहलाता है। जैसे सीपमें चांदीका निश्चय होना।

संशय और विपर्ययमें इतना अन्तर है कि संशय तो किसी

भी बातपर जमता नहीं है किंतु विपर्यय ज्ञान विपरीत एक बातपर जम जाता है।

जो विशेष प्रतिभासरूप न होकर यह क्या है ऐसा सामान्य ज्ञान होता है वह अनध्यवसाय है। जैसे मार्गमें नंगे पैर चलते हुए पुरुषको तिनके आदि चुभनेका ज्ञान।

जब विषय इन्द्रियोंके सामने सूक्ष्म तौरसे आवें और उस ओर विशेष उपयोग न लगाया जाय तब 'यह क्या है' ऐसा निर्बल ज्ञान होता है इसीको अनध्यवसाय कहते हैं। यह ज्ञान संशय तो इसलिये नहीं है कि इसमें अनेक कोटि 'जैसे यह तिनका है या कांटा है? आदि उत्पन्न नहीं होती हैं और विपर्यय इसलिये नहीं हो सकता है कि विपरीत उल्टी एक कोटिका निश्चय नहीं हो पाता है "जैसे तिनका चुभने पर कांटेके चुभनेका निश्चय होना।' इसकारण यह उन दोनोंसे पृथक् तीसरा ही मिथ्याज्ञान है।

(नोट—ये तीन भेद केवल प्रत्यक्ष प्रमाणाभासके हैं परोक्षके नहीं)

छठा पाठ।

प्रमाणके भेद।

प्रमाण यानी सच्चा ज्ञान दोप्रकारका होता है,—प्रत्यक्ष और परोक्ष।

जो ज्ञान किसी अन्यकी सहायता न लेकर पदार्थको स्पष्ट

जाने वह प्रत्यक्ष प्रमाण है। जैसे यह न्यायबोधक है, मैं सुखी हूं इत्यादि।

जो ज्ञान अन्य ज्ञानकी सहायतासे पदार्थको अस्पष्ट जाने उसे परोक्ष प्रमाण कहते हैं। जैसे शान्तिचन्द्रके घरमें अग्नि है क्योंकि उसमेंसे धुआं निकल रहा है।

यहांपर ऊपरके दृष्टांतमें शांतिचन्द्रके घरकी अग्निको जाननेके लिये यह आवश्यक है कि हमको अग्नि और धुए की व्याप्तिका यानी 'जहां अग्नि होती है वहींपर धुआं होता है' ऐसा ज्ञान हो ऐसे व्याप्तिज्ञानकी सहायतासे ही धुए को देखकर अग्नि का सद्भाव जान सकते हैं अन्यथा नहीं इसलिए हमारा धुए से अग्निको जानना परोक्ष प्रमाण है। इसीप्रकार "यह न्यायबोधक है अथवा मैं सुखी हूं" ये ज्ञान प्रत्यक्षप्रमाण है क्योंकि न्यायबोधकके जाननेमें तथा अपना सुख जाननेमें किसी अन्य ज्ञानकी सहायता नहीं ली गई है।

प्रत्यक्षप्रमाणके दो भेद हैं—एक परमार्थप्रत्यक्ष और दूसरा व्यवहारप्रत्यक्ष।

जिस ज्ञानकी उत्पत्ति इन्द्रिय और मनकी सहायता न लेकर केवल आत्मासे हो वह परमार्थप्रत्यक्ष है। जैसे अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान।

जो ज्ञान इन्द्रियों तथा मनके द्वारा उत्पन्न होता है वह व्यवहारप्रत्यक्ष है। जैसे हम लोगोंका नेत्रादि इन्द्रियोंसे उत्पन्न होनेवाला ज्ञान।

(यहां न्यायके प्रकरणमें प्रत्यक्षप्रमाण इसी व्यवहारप्रत्यक्षको समझना चाहिये ।)

सातवां पाठ ।

परोक्षप्रमाणके भेद ।

परोक्षप्रमाण पांचप्रकारका है—स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम।

पहिले जाने हुए पदार्थके स्मरण (याद) करनेको स्मृति कहते हैं, जैसे शान्तिनाथजी मुरेनामें हमारे साथ पढ़े थे।

जो ज्ञान स्मरण और प्रत्यक्षके द्वारा जोड़रूप होताहै उसे प्रत्यभिज्ञान कहते हैं । जैसे ये ही पूज्य प० गोपालदासजी बरैया हैं जिन्होंने अजमरमें शास्त्रार्थ करके स्वामी दर्शनानन्द सरस्वतीको हराया था।

भावार्थ—पूज्य प० गोपालदासजीको प्रत्यक्ष देखकर और अजमेरके शास्त्रार्थका स्मरण हो आनेपर जो दोनोंको मिलाकर "ये वे ही प० गोपालदासजी बरैया हैं" ऐसा जो ज्ञान हुआ वही प्रत्यभिज्ञान है। इसीप्रकार अन्यत्र भी प्रत्यक्ष और स्मृतिसे जोड़रूप ज्ञान होता है वह प्रत्यभिज्ञान कहलाता है अतः इस ज्ञानकी उत्पत्तिमें स्मृति और प्रत्यक्षज्ञानकी सहायता आवश्यक है। स्मृतिमें केवल पहिलेके प्रत्यक्षज्ञानकी ही सहायता लेनी पड़ती है ।

व्याप्ति यानी साध्य साधनके अविनाभावके ज्ञानको तर्क

कहते हैं। जैसे जहा जहां धुआं होता है वहा वहा अग्नि होती है और जहा अग्नि नहीं वहां धुआं भी नहीं।

अभिप्राय–साध्य और साधनभूत पदार्थों का जो अविना भावसम्बध यानी साध्यके बिना साधनका न होना है वह तो व्याप्ति कहलाती है जो कि साध्य साधनोंमें प्रत्येक स्थानपर विद्यमान है। दृष्टांतमें संसारभरकी अग्नि और धुए हैं। उस व्याप्तिका जो जान लेना है सो तर्क है अर्थात् व्याप्ति तो साध्य साधनके अविनाभावसम्बन्धरूप है और तर्क उस व्याप्तिको समझ लेने रूप है।

साधनसे साध्यके जाननेको अनुमान कहते हैं। जैसे भानु कुमार जैन है क्योंकि वह प्रतिदिन जिनदेवका दर्शन करता है।

आप्त यानी सत्यवक्ताके वचन आदिसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे आगमज्ञान कहते हैं जैसे श्रीमुनिसुव्रतनाथ तीर्थ करके शासनकालमें रामचन्द्र हुए थे।

भावार्थ जो पुरुष रागद्वेषरहित समस्त पदार्थों का पूर्ण जानकार (सर्वज्ञ) और हितोपदेशी होता है उसको आप्त कहते हैं उसीके वचन आदिसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे आगम कहते हैं। जैसे जिनेन्द्र भगवानका वचन है कि मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकरके समयमें रामचंद्र हुये थे' इसको जानलेना आगम है।



आठवां पाठ।

अनुमान।

अनुमानके दो प्रकार है,-स्वार्थानुमान और परार्थानुमान।

साधनसे जो साध्यका स्वयं ज्ञान होता है वह स्वार्थानुमान है। जैसे यशोधरने रसोईकी खिड़कियोंसे धुआं निकलता देख कर समझ लिया कि रसोइघरमें अग्नि है।

अन्य पुरुष द्वारा जो साधनसे साध्यका ज्ञान होता है यानी जो स्वार्थानुमानके वचनसे उत्पन्न होता है उसे परार्थानुमान कहते हैं। जैसे यशोधरने गुणभद्रको रसोईघरका धुआं दिखला-कर अग्निका सद्भाव बतलाया।

अनुमानके पांच अङ्ग होते हैं प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टांत, उपनय और निगमन।

पक्ष (साध्यके रहनेका स्थान) और साध्यके कहनेको प्रतिज्ञा कहते हैं। जैसे होमशालामें अग्नि है।

साधनके कहनेको हेतु कहते हैं। जैसे क्योंकि उसमेंसे धुआं निकल रहा है।

जहां साध्य साधनकी व्याप्ति दिखलाई जाय सो दृष्टान्त है। जैसे-जहां अग्नि होती है वहां धुआं होता है जैसे रसोईघर और जहां अग्नि नहीं होती है वहां धुआं भी नहीं होता है जैसे तालाब।

दृष्टांतके समान पक्षमें जो साधनका सद्भाव बतलाना है सो उपनय है। जैसे उसीतरह धुआं होमशालामें भी है।

अभिप्राय निकालकर प्रतिज्ञाका फिर कहना निगमन है। जैसे-इसलिए होमशालामें अग्नि है।

भावार्थ—"होमशालामें अग्नि है क्योंकि उसमेंसे धुआ निकल रहा है। जहां धुआ होता है वहा अग्नि अवश्य होती है जैसे रसोईघर। धुआ होमशालामें भी है इसलिए उसमें अग्नि है" अनुमानका पूरा रूप यह है। इसीके पाच भाग कर दिये जाते हैं जिनके कि नाम प्रतिज्ञा हेतु आदि हैं।

अनुमानके ये पांचों अ ग बालकोंका समझानेके अभिप्राय से ही माने गये हैं। बुद्धिमानके लिए तो प्रतिज्ञा और हेतु इन दो अ गोंमें अनुमानकी पूर्णता है।

नौवां पाठ।

साध्य और साधन।

जो इष्ट अबाधित और असिद्ध होता है उसे साध्य कहते हैं। जैसे शब्द अनित्य है क्योंकि वह कारणोंसे उत्पन्न होता है। यहा शब्दकी अनित्यता साध्य है।

भावार्थ—जो साधनद्वारा सिद्ध किया जाय उसका नाम साध्य है। वह साध्य इष्ट अबाधित और असिद्धरूप होता है।

वादी प्रतिवादी जिसे सिद्ध करना चाहें उसे इष्ट कहते हैं।

जिसमें प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे बाधा नहीं आवे उसे अबाधित कहते है। जैसे शब्दोंमें अनित्यता। यदि शब्दमें नित्यता को साध्य माना जाय तो प्रत्यक्षसे बाधा आती है क्योंकि जो

शब्द प्रगट होता है वह २१ घण्टे भी नहीं ठहरता है।

जिसका किसी प्रमाणसे निश्चय नहीं हुआ हो वह असिद्ध है।

साध्यमें ऊपर कही हुई तीनों बातें अवश्य होनी चाहिये।

साध्यके साथ जिसका अविनाभाव सम्बन्ध हो यानी जो साध्यके सद्भावमें ही मिले उसके अभावमें न पाया जावे उसे साधन या हेतु कहते हैं। जैसे अग्निका साधन धुआं है क्योंकि अग्निके मौजूद रहनेपर ही धुआं पाया जाता है यदि अग्नि नहीं होती है तो धुआं भी नहीं होता है।

साधनके भेद हैं एक उपलब्धि और दूसरा अनुपलब्धि।

जो साधन विधिरूप यानी सद्भावरूप हो वह उपलब्धिसाधन है जैसे कल रविवार था क्योंकि आज सोमवार है।

जो साधन निषेधरूप यानी असद्भावरूप हो उसे अनुपलब्धि साधन कहते हैं। जैसे यहां ठण्ड (शीत) है क्योंकि यहां अग्नि नहीं है।

दशवां पाठ।

साधनाभास।

जो साधन दोषसहित हो उसे साधनाभास या हेत्वाभास कहते हैं।

हेत्वाभास चार प्रकारके होते हैं असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक और अकिंचित्कर।

जो हेतु (साधन) अपने साध्यमें न पाया जाय उसे असिद्ध हेत्वाभास कहते हैं। जैसे आत्मा ज्ञानगुणमय है क्योंकि वह नेत्रोंसे दीखता है।

जो हेतु साध्यसे विरुद्ध पदार्थके साथ अविनाभाव सम्बन्ध रखता हो उसे विरुद्धहेत्वाभास कहते हैं। जैसे राजेन्द्र विद्यार्थी है क्योंकि वह कुछ नहीं पढ़ता लिखता है।

जो हेतु पक्ष, सपक्ष, और विपक्षमें रहे उसे अनेकान्तिक या व्यभिचारी हेत्वाभास कहते हैं जैसे रिपुदमनसिंह क्षत्रिय है क्योंकि वह मनुष्य है।

भावार्थ—जहां साध्यको सिद्ध किया जाता है उसे पक्ष कहते हैं जैसे ऊपरके दृष्टान्तमें रिपुदमनसिंह। जहां साध्य निश्चितरूपसे रहता है उसे सपक्ष कहते हैं जैसे प्रतापसिंह पृथ्वीराज अन्य क्षत्रिय। जहां साध्यके अभावका निश्चय हो उसे विपक्ष कहते हैं जैसे सोमशर्मा, चन्द्रसेन आदि ब्राह्मण वैश्य शूद्र मनुष्य। ऊपरका मनुष्य हेतु पक्ष सपक्ष विपक्षरूप रिपुदमनसिंह, प्रतापसिंह, पृथ्वीराज, सोमशर्मा, चन्द्रसेन सबमें रहता है इसलिये वह अनेकान्तिक या व्यभिचारी हेत्वाभास है।

जो हेतु कुछ भी सिद्ध न कर सके उसे अकिंचित्कर हेत्वाभास कहते हैं। यह दो तरहका है—सिद्धसाधन और बाधितविषय।

जिस हेतुका साध्य पहलेसे ही सिद्ध हो उसे सिद्धसाधन

कहते हैं जैसे हरिण पशु है क्योंकि वह घास चरता है।

जिस हेतुके साध्यमें प्रमाणोंसे बाधा आवे उसे बाधित विषय कहते हैं जैसे धनदेव वन्ध्याका पुत्र है क्योंकि वह लड़का है।

ग्यारहवां पाठ।

दृष्टांतके प्रकार।

दृष्टांत यानी जहांपर साध्य साधन अवश्य पाये जाते हैं- दो तरहका होता है अन्वय, व्यतिरेक।

जहांपर साधनके सद्भावमें साध्य दिखलाया जाता है उस अन्वयदृष्टान्त कहते हैं जैसे रसोई घरमें धूमके होनेपर अग्निका सद्भाव बतलाया गया है अतः रसोईघर अन्वय दृष्टान्त है।

जहांपर साध्यके अभावमें साधनका न होना बतलाया जाय उसे व्यतिरेक दृष्टान्त कहते हैं जैसे तालाब, क्योंकि उसमें अग्नि के अभावसे धुऐं का नहीं होना दिखाया गया है।

दृष्टान्तोंकी अपेक्षासे हेतुके भी तीन भेद हैं—केवलान्वयी, केवलव्यतिरेकी, अन्वयव्यतिरेकी।

जिस हेतुका केवल अन्वयदृष्टान्त ही मिल सके वह केवलान्वयी हेतु है। जैसे जीवद्रव्य सत्स्वरूप है क्योंकि वह आकाशमें रहता है। जैसे पुद्गलादिक।

जिसहेतुका केवल व्यतिरेक दृष्टान्त ही मिल सके उस केवलव्यतिरेकी हेतु कहते हैं। जैसे जीवित शरीरमें आत्मा होता है

क्योंकि जीवित शरीर आत्मासे भिन्न दूसरी जगह नहीं पाया जाता।

जिस हेतुका अन्वय और व्यतिरेक दृष्टान्त दोनों ही मिल सकें उसे अन्वयव्यतिरेकी कहते हैं। जैसे शब्द अनित्य है क्योंकि वह कृत्रिम है। जो कृतक होता है वह अनित्य होता है जैसे घट। जो अनित्य नहीं होता वह कृतक भी नहीं होता जैसे आकाश।

बारहवां पाठ।

स्याद्वाद-सप्तभंगी

एक वस्तुमें अनेक धर्म रहते हैं उनमेंसे किसी एक धर्मकी अपेक्षासे कथन करनेको स्याद्वाद कहते हैं, इसका दूसरा नाम सप्तभंगी भी है अर्थात सात भंगो (भेदों) द्वारा वस्तुके स्वरूपका प्रतिपादन करना सो सप्तभङ्गी कहलाता है। वस्तुके स्वरूपके प्रतिपादन करनेके लिये सात ही तरीके हो सक्ते हैं। इनका नयों की अपेक्षा लेकर कथन करना सो सप्तभङ्गी है। विना सप्तभंगी आश्रय लिये वस्तुका यथार्थ स्वरूप प्रतिपादन नहीं हो सक्ता है।

दृष्टान्तके लिये श्री १००८ आदिनाथ भगवान तीर्थङ्करकी प्रतिमाको ही लीजिये। भगवान जिनेन्द्र जिसवक्त अष्टप्रतिहार्य युक्त होकर समवसरणमें भव्यजीवोंको उपदेश देते थे उस अपेक्षाको लेकर वे अरहन्त तीर्थङ्कर थे। तथा इस समयकी अपेक्षा वे भगवान आदिनाथ सिद्ध परमात्मा हैं। इस प्रकार एक ही [illegible] प्रश्नके अनुसार अपेक्षाके [illegible]

निषेध (गैर मौजूदगी)-की कल्पना की जाती है उस समय सप्तभङ्गीका पूरा रूप तैयार होता है।

स्याद्वादमें सात प्रकारकी भङ्गे (शाखाएं) होती हैं इसी कारण उसका दूसरा नाम सप्तभङ्गी है। वे सात भङ्ग ये हैं— स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अस्ति नास्ति, स्यात् अवक्तव्य, स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्य स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य।

पदार्थ अपने स्वरूपसे होता है इस कल्पनाको स्यात् अस्ति कहते हैं। जैसे—अग्नि उष्ण गुणकी अपेक्षा कथंचित् है इस लिये वह उष्णगुणकी अपेक्षा स्यात् अस्तिरूप है।

पदार्थ अन्य पदार्थोंके स्वरूपकी अपेक्षा नहीं होता है इस कल्पनाको स्यात् नास्ति भङ्ग कहते हैं। जैसे—अग्नि शीतलगुण की अपेक्षा कथंचित् नहीं है अतः शीतलताकी अपेक्षा उसमें स्यात् नास्ति भङ्ग घटित होता है।

एक ही पदार्थमें स्वस्वरूपकी अपेक्षा अस्तिपना और पर स्वरूपकी अपेक्षा नास्तिपना है इसीको स्यात् अस्ति नास्ति कहते हैं। जैसे अग्निमें स्वस्वरूपकी अपेक्षा उष्णत्व गुण है और शीतल गुणकी अपेक्षा नास्तित्व है।

पदार्थ अपने स्वरूपमें है और परस्वरूपसे नहीं है इन दोनों धर्मों को एक कालमें प्रतिपादन करनेवाला कोई शब्द नहीं है। यह कल्पना स्यात् अवक्तव्य भङ्ग है। जैसे—अग्निका स्वरूप युगपत् (एकसाथ) उष्ण और शीतलगुण की अपेक्षा कुछ वचनसे नहीं बतलाया जा सकता है अतः वह इस अपेक्षासे स्यात् अवक्तव्य रूप है।

पदार्थ अपने स्वरूपसे कथंचित् है और एकसाथ अपने तथा अन्य पदार्थों के स्वरूपकी अपेक्षा कथंचित कहनेके बाहर है इस कल्पनाको स्यात्‌अस्तिअवक्तव्यभंग कहते हैं। जैसे अग्नि उष्णगुणकी अपेक्षा कथंचित् होती हुई भी एकसाथ उष्ण और शीतलगुणकी अपेक्षा कहनेमें नहीं आसकती है इसी अपेक्षा अग्नि स्यात्‌अस्तिअवक्तव्यरूप है।

पदार्थ अन्य पदार्थोंकी अपेक्षा कथंचित् अभाव रूप होता हुआ एकसाथ अपने और अन्य पदार्थोंके स्वरूपकी अपेक्षा कहा नहीं जा सकता है, इस कल्पनाको संज्ञा स्यात् नास्ति अवक्तव्य है। जैसे अग्नि शीतलता की अपेक्षा नहीं यानी अभावरूप होतीहुई भी एकसाथ शीतलता और उष्णताकी अपेक्षा कथंचित् कहनेमें नहीं आती है यानी अवक्तव्य है अत इस-प्रकार उसमें स्यात् नास्ति अवक्तव्य भंग है।

पदार्थ क्रमसे अपने और अन्य पदार्थों के स्वरूपकी अपेक्षा कथंचित है, और नहीं है यानी सद्भाव और अभावरूप होता हुआ भी एकसाथ अपने और अन्य पदार्थों की अपेक्षा कथंचित् वचन द्वारा बतलाया नहीं जा सकता है यानी अवक्तव्य है इसी कल्पनाका नाम स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य भंग है। जैसे अग्नि क्रमसे उष्णता और शीतलताकी अपेक्षा तो सद्भाव और असद्भावरूप है और एकसाथ उष्णता और शीतलताकी अपेक्षा कही नहीं जासकती है यानी अवक्तव्य है अत इस अपेक्षा अग्नि स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्यरूप है।

इति शुभम्।

(१५१) एकसौ इक्यावन रुपयेमें हजारों दुर्लभ जैन ग्रन्थ

आपने कलकत्ता की 'भारतीय जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्था' का नाम अवश्य सुना होगा। इस संस्थाको स्थापित हुये लगभग १५ वर्ष हुये, इस बीचमें इसने बहुत बड़े बड़े अप्राप्य जैन ग्रन्थों को हिंदी-संस्कृत टीका सहित छपाकर जैनसमाजका अपरिमित कल्याण किया है। इस संस्थाका उद्देश्य जैनसिद्धान्तका प्रचार करना है, इसलिये इसका एक यह नियम है कि एक साथ (१५१) एकसौ इक्यावन रुपये जो महाशय देंगे उनको नीचे लिखे ग्रन्थ तो अभी रुपया देते समय बिना मूल्य मिल जायंगे और भविष्य में जिस जिस प्रकार ग्रन्थ छपते जायंगे एक एक प्रति उनको बिना मूल्य दी जाया करेगी। इस प्रकार अल्प रुपये एक बार देनेसे जैन ग्रन्थोंका एक भंडार हो जाता है। आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि—जो जैनग्रन्थ अभी मिल जायंगे उनकी न्योछावर (१३४) एकसौ चौतीस रुपयेके लगभग है जिससे इतने रुपये तो अभी वसूल हो जायंगे बाकी १७ सत्तरह रुपयेमें जबतक संस्था जीवित रहेगी तबतक छपनेवाले ग्रन्थोंकी एक प्रति मिलती रहेगी केवल पोस्टेज (डाक) खर्च देना पड़ेगा। इसलिये इस अवसरको मत छोड़िये आजही अपना नाम संस्थाके स्थायी ग्राहकोंमें लिखा लीजिये।

एकसौ इक्यावन रुपया देनेसे अभी हालमें मिलनेवाले जैनग्रंथोंकी नामावली

ग्रन्थोंके नाम	मूल्य
श्री गोम्मटसारजी बडी टीका कर्मकांड और लब्धिसार क्षपणासार	६१)
तत्त्वार्थराजवार्तिकालंकार भाषा (पूर्ण)	३०)
आदिपुराणवचनिका (पं० दौलतरामजी कृत)	२०)
रत्नकरंड श्रावकाचार वचनिका बडी	५॥)
पुरुषार्थसिद्ध्युपाय बडी टीका	६॥)
राजवार्तिक संस्कृत	४)
शब्दार्णवचन्द्रिका	३)
सागारधर्मामृत संस्कृत	३॥)
चारित्रसार	२॥)
संशयवदन विदारण	१॥)
विमलपुराण	१॥)
आराधनासार	१।)
स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा	१)
धर्मपरीक्षा	१)
प्रायश्चित्तसमुच्चय (बिलकुल नया ग्रंथ)	१॥।)
जिनदत्तचरित्र	॥=)
मकरध्वजपराजय	॥=)
ग्रंथत्रयी	१)
द्वादशानुप्रेक्षा	।=)